औरंगजेब की राजपूत नीति

औरंगजेब के काल में मुगलों की राजपूत नीति में व्यापक बदलाव आया। कई विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है कि औरंगजेब ने गैर मुस्लिमों के प्रति कट्टरवादी धार्मिक नीति का अनुगमन किया जिससे मुगल-राजपूत नीति में तनाव आया और मारवाड़ एवं मेवाड़ से सम्बन्ध विच्छेद हुआ। इस संदर्भ में प्रायः यह भी कहा जाता है कि इसने एक प्रकार से अकबर की राजपूत नीति को पूरी तरह से उलट दिया जिससे साम्राज्य को काफी नुकसान हुआ तथा उसके विघटन का प्रमुख कारण बना।

लेकिन वास्तव में देखा जाये तो सामान्य मान्यता के विपरीत औरंगजेब की राजपूत नीति उसके पूरे शासन काल में एक जैसी नहीं रही। विभिन्न कारणों के दबाव में समय के साथ उसकी राजपूत नीति में क्रमिक बदलाव आया। औरंगजेब की राजपूत नीति का विकास तीन चरणों में हुआ। -

(क) पहला चरण - 1658 से 1668 ई० के बीच
(ख) दूसरा चरण - 1668 से 1677 ई० के बीच
(ग) तीसरा चरण - 1678 से 1707 ई० के बीच

औरंगजेब की राजपूत नीति का प्रथम चरण 1658 ई० से 1668 ई० के बीच का रहा। इसमें उसके राजपूतों के साथ सम्बन्ध काफी मजबूत एवं प्रगाढ़ रहे। इस दौरान राजपूत मुगल साम्राज्य के भागीदार एवं प्रमुख हितधारक बने रहे। यहाँ तक कि शाहजहाँ की तुलना में राजपूत अमीरों को अधिक सम्मान एवं ऊँचे ओहदे दिये गये। जयसिंह एवं जसवन्तसिंह को न केवल 7000 का मनसब दिया गया बल्कि क्रमशः दक्कन एवं गुजरात का सूबेदार भी बनाया गया। उत्तराधिकार युद्ध में दो बार दल बदलने वाले जसवन्त सिंह को माफी

दी गई तथा मेवाड़ के राजा से भी सम्बन्ध बनाये गये।

फिर भी इस चरण के अंतिम दिनों में संबंध में कुछ शिथिलता के संकेत मिलते हैं। मेवाड़ के राजा राज सिंह को शाही अनुमति के बिना किशनगढ़ पर हमला करने तथा राजकुमारी चारुमति से विवाह करने के लिये न केवल स्पष्टीकरण मांगा गया बल्कि जवाब से संतुष्ट न होने पर दंडस्वरूप दंड लिया तथा बाँसवाड़ा का क्षेत्र छिन लिया गया। साथ ही शिवाजी के संबन्ध में राजपूतों की भूमिका को लेकर भी औरंगजेब सशंकित हुआ। दरअसल शाइस्ता खाँ की छावनी पर शिवाजी का हमला, फिर शिवाजी का आगरा से पलायन करना आदि घटनाओं ने जयसिंह के विरोधियों को उसके खिलाफ बादशाह के कान भरने का अनुकूल अवसर दिया।

कुल मिलाकर देखा जाये तो इन घटनाओं की वजह से औरंगजेब एवं राजपूतों के रिश्ते में थोड़ा ठंडापन जरूर आया किंतु मुगल राजपूत सम्बन्ध पूर्ववत बने रहे।

औरंगजेब की राजपूत नीति का दूसरा चरण 1678 ई० में प्रारंभ हुआ तथा 1707 ई० तक चला। यह वह दौर था जब औरंगजेब अनेक परेशानियों से घिरा हुआ था। वास्तव में 1665 ई० के से ही उसके सामने एक के बाद एक गंभीर चुनौतियाँ आने लगी जैसे शिवाजी का आगरा से भागना, जाट विद्रोह, सतनामी विद्रोह, मराठा विद्रोह और इसी के साथ वित्तीय संकट की स्थिति। औरंगजेब ने साम्राज्य की एकता एवं अखण्डता बनाये रखने के लिए मुसलमानों को गोलबन्द करना चाहा और इसके लिये राज्य के इस्लामी चरित्र पर बल दिया। इसके तहत कई कट्टरवादी कदम उठाये जिससे रूढ़िवादी तत्वों को बल मिला जबकि राजपूतों को केन्द्र से दूर संकटग्रस्त क्षेत्रों में नियुक्त किया गया, राजपूतों को

इस दौरान किसी राज्य की सूबेदारी नहीं दी गई तथा कई ऊँचे ओहदे वाले मनसबदारों को अपेक्षाकृत निम्न पदों पर नियुक्त किये। उदाहरण-स्वरूप जसवन्तसिंह को नागौर का थानेदार बनाकर भेजा गया। जो यकीनन उनकी पदावनति थी। इसी तरह रामसिंह को सैनिक अभियान पर बंगाल भेजा गया तो उसे वहाँ की सूबेदारी नहीं सौंपी गई। इस तरह दूसरे चरण में इनके सम्बन्धों में मनोमालिन्य की स्थिति आ गई थी।

औरंगजेब की राजपूत नीति का तृतीय चरण 1678 ई. में प्रारंभ हुआ। इस चरण में मारवाड़ एवं मेवाड़ से सम्बन्धों में कड़वाहट आयी। यदुनाथ सरकार जैसे लेखकों की मान्यता है कि औरंगजेब एक धर्मान्ध शासक था। वह राजपूतों की शक्ति का विनाश करना चाहता था और इस उद्देश्य से उसने मारवाड़ पर वहाँ के शासक जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद अधिकार करना चाहा। मगर दुर्गादास के नेतृत्व में राठौर सरदारों ने प्रबल विरोध किया जो लगभग बीस वर्षों तक चला। इसमें काफी धन-जन की क्षति हुई। यद्यपि राजपूत मुगलों के समर्थक एवं सेवक थे लेकिन जब औरंगजेब ने उनके विलासी दमनकारी नीति अपनायी तो उन्होंने भी मुगल साम्राज्य के विनाश में सूत्रधार का काम किया।

लेकिन नवीनतम शोध उपरोक्त धारणाओं को नकारते हैं। रामप्रसाद त्रिपाठी, अतहर अली, एवं सतीशचन्द्र आदि ने तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक कारणों के परिपेक्ष्य में उसकी राजपूत नीति का मूल्यांकन किया है एवं बताया है कि वह न तो राजपूतों का कट्टर विरोधी था और ना ही उनका विनाश करना चाहता था। मारवाड़ का प्रश्न शुद्ध रूप से उत्तराधिकार से जुड़ा मामला था, दूसरे अभी भी कई राजपूत वंश उसकी सेवा में थे।

निश्चय ही औरंगजेब-मारवाड़ संबन्ध

मुगल-राजपूत सम्बन्ध में थोड़ी कड़वाहट घोली थी। मारवाड़ का प्रश्न 1678 ई० में पैदा हुआ जब जसवन्त सिंह बिना किसी उत्तराधिकारी के मर गये। अतएवं उत्तराधिकारी के अभाव में राजगामिता कानून के तहत उनके राज्य को केन्द्रीय प्रशासन के तहत ले लिया गया। तभी जसवंत सिंह की गर्भवती दो पत्नियों ने दो बच्चे को जन्म दिया जिसमें से एक की मृत्यु शैशवावस्था में ही हो गयी। अब राठौर सरदारों ने दुर्गादास के नेतृत्व में जसवंत सिंह के पुत्र अजीत सिंह को गद्दी देने की माँग की। औरंगजेब प्रशासनिक कारणों से बालक को गद्दी देने से मना कर दिया। अतएव राठौर सरदारों ने दुर्गादास के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। औरंगजेब इस विद्रोह को कुचलने के लिये काफी जोर लगाया। 1680-81 ई० में स्थिति तब और बिगड़ गई जब मेवाड़ के राजा राजसिंह जो अजीत सिंह को मामा लगता था, मारवाड़ का समर्थन करते हुये विद्रोह में शामिल हो गया। औरंगजेब तब अजीत सिंह के चचेरे भाई इन्द्र सिंह को मारवाड़ का शासन सूत्र सौंपा लेकिन उसे राठौर सरदारों ने अपना समर्थन नहीं दिया। इसी समय अकबर द्वितीय भी इन विद्रोहियों से जा मिला। समय की नजाकत को देखते हुये औरंगजेब ने मेवाड़ के शासक से संधि कर ली। अंततः 1698 ई० में मारवाड़ से भी समझौता हो गया एवं अजीत सिंह को मान्यता दे दी गई।

इस तरह जब हम औरंगजेब की राजपूत नीति पर समग्र दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि आरंभ में औरंगजेब ने इसमें कोई बदलाव नहीं किया। दरअसल उसकी आरंभिक राजपूत नीति लगभग वैसी ही थी जैसी अकबर एवं जहाँगीर की थी किंतु आगे चलकर कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बनी जिससे मुगल-राजपूत रिश्ते में शिथिलता आने लगी और जिसकी परिणति मारवाड़ एवं मेवाड़ में मुगलों

के खिलाफ विद्रोह के रूप में हुई। किंतु यह मुगल-राजपूत सम्बन्धों का अंत नहीं था, क्योंकि अनेक राजपूत जैसे आमेर, बीकानेर, बूंदी, कोटा आदि अभी भी मुगल सेवा में बने रहे। इतना ही नहीं कुछ ही दिनों के बाद मेवाड़ से समझौता हो गया तथा मारवाड़ से भी सम्बन्ध बहाल हो गये। लेकिन इस बदलाव के बावजूद राजपूत न तो अब मुगल साम्राज्य के प्रमुख साझीदार रहे और न हथियार।

इसमें दो राय नहीं कि औरंगजेब के समय पहले से चली आ रही राजपूत नीति में कुछ संशोधन जरूर हुये जो कुछ तो परिस्थिति जन्य थी तथा कुछ उसकी अपनी हठधर्मिता, राजनीतिक अदूरदर्शिता एवं नीतिगत भूलों का परिणाम। चाहे कारण जो रहे हो इसका प्रभाव मुगल साम्राज्य की शक्ति एवं दृढ़ता पर पड़ा। लेकिन इसे मुगल साम्राज्य के पतन के लिये एकमात्र कारण बताना समीचीन ना होगा क्योंकि मुगल साम्राज्य के और भी आधार, जिसपर वह साम्राज्य टिकी हुई थी। तो भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इसके कारण गैर-मुस्लिम आबादी में बादशाह की साख में कमी आयी तथा उसके मनसूबे के प्रति आशंकायें पैदा हुयी। इस तरह निश्चय ही उस समामेलन की प्रक्रिया को आघात लगा जिसे अकबर ने शुरू किया था।

-०-